THE ECONOMIC TIMES

Date: 16-09-17

Welcome move on commercial coal mining

ET Editorials

We welcome the opening up of domestic coal for commercial mining. This is one piece of reform that is entirely to this government's credit. One can crib that it comes late in the day after fossil fuels have fallen firmly into disfavour. But, with some of the world's largest reserves of coal, India needed to remove the self-inflicted constraint of an inefficient state monopoly to avoid coal imports. Unions are hostile to the move but should be made to see reason. It is necessary to draw up modern safety codes and a credible scheme for its enforcement, to get the unions on board.

Instead of captive mining of coal characterised by rigidities and diseconomies, commercial mining that seeks multiple customers would unlock economies of scale and would be very much in the national interest. Ten coal blocks across four states have been identified for commercial mining, although no timeline has been set for their auction. Note that following the Supreme Court's order of September 2014 cancelling allocation of 214 captive coal mines, and the passage of the Coal Mines (Special Provisions) Act, 2015, some 45 coal blocks were auctioned off in three phases. But the mines allocated were all very much for captive use, and several of them are yet to be worked.Coal will remain India's main source of commercial energy in the medium term. Hence the pressing need to put in place norms for safe and efficient mining, evacuation and beneficiation of coal, with least damage to the environment. In tandem, we need to boost thermal efficiency and mandate ultra-super critical and advanced ultra-super critical boiler technology. India must pursue clean coal technologies, including coal gasification and 'quick starts' in thermal plants, for better systemic integration with renewable energy.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 16-09-17

बेकार की दहशत और बुनियाद की ताकत

शेखर गुप्ता

होमियोपैथी अपेक्षाकृत आधुनिक चिकित्सा पद्घति है। इसकी खोज जर्मनी में सैमुअल हैनीमेन ने सन 1796 में की। किसी ने इसकी सराहना की तो किसी ने सवाल उठाया तो कुछ लोगों ने इसे खारिज किया। विकसित दुनिया में तो इसे छद्म विज्ञान कहकर इसका मखौल तक उड़ाया गया। भारत में यह आज भी मुख्य धारा की चिकित्सा शैली है। हर छोटे बड़े शहर में इसके चिकित्सक हैं और उनमें से ज्यादातर विश्वसनीय चिकित्सक डॉ. बनर्जी नाम के ही मिलेंगे। अपने गृह स्थान जर्मनी में यह पद्घति लगभग मृतप्राय है। भारत में यह फलफूल रही है और केंद्र सरकार इसे अच्छी खासी आर्थिक मदद भी देती है। आयुष (आयुर्वेद, योग और प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, सिद्घ और होमियोपैथी) इसका उदाहरण है। हमारे देश में इसका मजाक उड़ाना खतरनाक है। भारत में होमियोपैथी की लोकप्रियता की वजह भी जरूर होगी। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह पद्घति बनी ही ऐसे लोगों के लिए है जो बीमारी की शंका भर होते ही मीठी सफेद गोलियां चूसना शुरू कर देते हैं। यह सिलसिला महीनों तक चलता है। आपको कोई असर नहीं नजर आता लेकिन धीरे-धीरे आपको लगता है कि आप ठीक हो रहे हैं। दूसरी बात इसका कोई नुकसान नहीं होता जबकि तगड़ी दवाई या शल्य चिकित्सा का प्रभाव तुरंत दिख सकता है। क्या हम होमियोपैथिक मनोदशा वाला देश बन चुके हैं। यह सोच अन्य क्षेत्रों में भी लागू होती है। खासतौर पर प्रशासन और बुनियादी विकास के क्षेत्र में। आप किसी भी आकार की परियोजना का जिक्र कीजिए और लाखों लोग आकर बताने लगेंगे कि कयामत आ जाएगी। इस सप्ताह प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और जापान के प्रधानमंत्री शिंजो आबे ने अहमदाबाद-मुंबई बुलेट ट्रेन की आधारशिला रखी तो वही सिलसिला चालू हो गया। कांग्रेस नेता और अधिवक्ता अभिषेक मनु सिंघवी ने तो ताज महल की याद दिलाते हुए कहा कि कैसे उसके चलते भारत आर्थिक संकट, अकाल और भुखमरी का शिकार हो गया था। उन्होंने कहा कि बुलेट ट्रेन तो चलेगी लेकिन उसके अलावा क्या होगा इसकी कल्पना कर लीजिए। ऐसी ही आलोचना कई और हलकों से आई। क्या भारत इसका बोझ उठा सकता है, क्या यह व्यवहार्य है, क्या इसे चलाना आर्थिक दृष्टिं से समझदारी भरा होगा? सबसे तगड़ी आलोचना कुछ इस रूप में सामने आई कि जब देश में 17,000 मानवरहित रेलवे क्रॉसिंग हैं और ट्रेनें लगातार बेपटरी हो रही हैं तो क्या देश को बुलेट ट्रेन के लिए आगे बढऩा चाहिए? ये वही लोग हैं जो शिकायत करते रहे हैं कि सन 1971 के बाद देश में ट्रेनों की अधिकतम गति नहीं बढ़ी है।

सबसे रोचक आर्थिक दलील यह है कि हवाई यात्रा का टिकट इतना सस्ता होने पर भला बुलेट ट्रेन का टिकट कौन खरीदेगा? यह बात हर कोई भूल रहा है कि हवाई टिकट के दाम में कमी केवल निजीकरण के चलते आई है क्योंकि क्षमता और आपूर्ति बढ़ी है। विमानन क्षेत्र अप्रतिस्पर्धी और महंगे सरकारी प्रभुत्व से निकलकर मुक्त बाजार के हाथ में आया और सफल हुआ। हवाई सफर का जबरदस्त लोकतंत्रीकरण हुआ है। बहरहाल, संसद की परिवहन मामलों की स्थायी समिति ने सन 2013 में छह अन्य बड़े हवाई अड्डों के निजीकरण का विरोध किया। उसकी ओर से बोलते हुए माकपा महासचिव सीताराम येचुरी ने कहा कि समिति निजीकरण और परिसंपत्तियों को निजी हाथों में सौंपने के खिलाफ है। बुलेट ट्रेन की आलोचना करने वाले सोच रहे हैं कि अब विमान किराया कभी नहीं बढ़ेगा और न ही बुलेट ट्रेन का किराया कम होगा। न ही वे इसके चलते जमीन के मूल्य में बदलाव और शहरीकरण की दलील को ध्यान में रख रहे हैं। वे कार्बन उत्सर्जन करने वाली कारों और राजमार्गों की समस्या को भी तवज्जो नहीं दे रहे हैं। यहां तक कहा जा रहा है कि 50 साल के लिए नाम मात्र के ब्याज पर लिया गया ऋण हमें बरबाद कर सकता है। देश के करोड़ों गरीब यात्रियों को इससे कोई लेनादेना नहीं है। जब भी कोई बड़ी परियोजना शुरू होती है तो ऐसा ही होता है। जब ई श्रीधरन ने कोंकण रेलवे का काम शुरू किया और जब सन 1995-99 में नितिन गडकरी ने महाराष्ट्र के युवा परिवहन मंत्री के रूप में मुंबई-पुणे एक्सप्रेसवे शुरू किया था तब भी ऐसी ही प्रतिक्रियाएं सामने आईं। कहा गया था कि इससे पर्यावरण और सरकारी खजाने पर भारी असर होगा। आज हम इनके बिना रहने की कल्पना भी नहीं कर सकते। देश में बनाओ, चलाओ, हस्तांतरित करो आधार पर बना पहला एक्सप्रेसवे इस क्षेत्र में चले देशव्यापी अभियान के लिए प्रेरणा बन गया।परियोजना की पूरी वसूली टोल नाके से हो जाती है। परंतु इसका वास्तविक लाभ कहीं और दिखता है। एक्सप्रेसवे ने पुणे को भीड़ भरे मुंबई का विकल्प बना दिया। यह अब आईटी, नवाचार और नई अर्थव्यवस्था का केंद्र बन चुका है। इसने अरबों डॉलर की संपत्ति निर्मित की है। कोंकण रेलवे देश का गौरव है और वाम के गढ़ केरल की जीवनरेखा भी। अतीत में योजना आयोग भी यह काम करता था। वह किसी बड़ी और महत्त्वाकांक्षी परियोजना को फाइल के स्तर पर ही खारिज कर देता था। एक किस्सा यह भी है कि योजना भवन ने मारुति परियोजना को ख्वाब करार देते हुए कहा था कि उसके अनुमान के मुताबिक हिंदुस्तान में सालाना 50,000 से अधिक कारें नहीं बिकेंगी। हिंदुस्तान मोटर्स और प्रीमियर पहले ही कार बना रही हैं तो मारुति की क्या जरूरत? इस बात को समझदारीपूर्वक ठुकरा दिया गया। आज देश वाहन क्षेत्र की विश्व शक्ति है। वर्ष 2016-17 में देश में 30 लाख से अधिक कारें बिकीं और 7.5 लाख कारें निर्यात की गईं।महानगरों के हवाई अड्डों के निजीकरण को लेकर चल रही बहस को देखें। सरकारी संपत्तियों के निजीकरण के स्वाभाविक वाम विरोध के अलावा व्यवहार्यता, जरूरत से ज्यादा क्षमता, संसाधनों की कमी आदि अनेक पहलू रहे हैं। आज मुंबई, दिल्ली और बेंगलूरु में क्षमता से ज्यादा यात्री हैं और इनका तेजी से विस्तार हो रहा है। हवाई क्षेत्र में जबरदस्त उछाल और विमान किरायों में भारी कमी, ये दोनों ही बिना इसके संभव नहीं हो सकते थे। दिल्ली हवाई अड्डे के निकट बनी एयरोसिटी को तब सफेद हाथी कहकर खारिज कर दिया गया था।

दिल्ली हवाई अड्डे के निजीकरण पर सीएजी की रिपोर्ट चर्चा में रही थी, अब उसका भी कहीं कोई जिक्र नहीं। ऐसी ही तमाम दलीलें दिल्ली मेट्रो के वक्त भी सुनने को मिली थीं। आज 11 शहरों में मेट्रो बन रही है और दिल्ली में इसका चौथा चरण पूरा हो रहा है।टिप्पणी: परिवहन विशेषज्ञ और आईआईटी प्रोफेसर दिनेश मोहन ने सन 2002 में कहा था, 'मुझे नहीं लगता कि सन 2021 में पांचवां चरण पूरा होने तक मेट्रो बची रह सकेगी।' कई मामलों में होमियोपैथी सोच की भी जीत हुई है। मुंबई सी लिंक को बांद्रा से वर्ली तक एक तिहाई बनाकर छोड़ दिया गया। वर्सोवा-बांद्रा और वर्ली-

चौपाटी का काम नहीं हुआ। दिल्ली में बारापूला एलिवेटेड कॉरिडोर आधा बनाकर छोड़ दिया गया। अब इसे पश्चिम की ओर बढ़ाया जा रहा है और सात साल में काम पूरा होगा।देश में कुप्रशासन का एक जीता जागता नमूना है राजधानी का राव तुला राम मार्ग जिसे दिल्ली हवाई अड्डे जाने वाले आठ लेन के राजमार्ग के दो सिरों को जोडऩे वाला बनाया गया था। यह एक संकरा रास्ता है। इसके पीछे एक अनकही वजह यह भी है कि पूर्व राष्ट्रपति आर वेंकटरामन की जाति के एक ताकतवर समूह से सरकार ने वादा किया था कि उस पहाड़ी को नहीं छेड़ा जाएगा जिस पर लोकप्रिय स्वामी मलाई मंदिर बना था। कुछ ही साल के भीतर उसका पुनर्निर्माण और विस्तार करना पड़ रहा है। दिल्ली-जयपुर और दिल्ली-अमृतसर राजमार्गों को छह लेन वाला बनाया जा रहा है। आठ लेन वाला दिल्ली-गुडग़ांव राजमार्ग पूरा होने के पहले ही छोटा पडऩे लगा है। सरकार पहले इसे आठ के बजाय 12 लेन में बनाने का प्रस्ताव ठुकरा चुकी थी। यही वजह है कि देश में बुनियादी क्षेत्र का काम चलता ही रहता है। होमियोपैथी शैली की योजना नुकसानरहित नहीं है। बुलेट ट्रेन में अच्छी बात यह है कि परियोजना का नियंत्रण जापान के हाथ रहेगा। मोदी सरकार को लेकर चाहे जो भी कहें लेकिन यह आरोप नहीं लगा सकते उसमें गति और आकार को लेकर पुरातन भारतीय भय कायम है। यह बात दीगर है कि उसने अपनी सरकारी प्रतिबद्घता को होमियोपैथी तक बढ़ा लिया है।

नईदुनिया

Date: 16-09-17

म्यांमार संकट से पार पाने की चुनौती

हर्ष वी पंत

रोहिंग्या मुसलमानों का मसला दिन प्रतिदिन पेचीदा होता जा रहा है। इस मसले की जद में भारत भी आ चुका है। रोहिंग्या मुस्लिम शरणार्थियों का मसला जब सुर्खियां नहीं बना था तब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के म्यांमार दौरे ने यह दर्शाया था कि इस पड़ोसी देश को लेकर भारत को अपने रणनीतिक हितों और घरेलू आदर्शों के बीच संतुलन साधने की जद्दोजहद क्यों करनी पड़ती है? यह जद्दोजहद अभी भी करनी पड़ रही है और इसका पता इससे चलता है कि एक ओर नई दिल्ली यह स्पष्ट कर रही कि वह अवैध रूप से आए रोहिंग्या शरणार्थियों को स्वीकार नहीं करेगी वहीं दूसरी ओर वह बांग्लादेश भागकर आए इन शरणार्थियों को राहत सामग्री भेज रही है। इसी के साथ म्यांमार सरकार की सीधी आलोचना से बच रही है। भारतीय प्रधानमंत्री का म्यांमार दौरा ऐसे समय हुआ था जब रोहिंग्या संकट से निपटने को लेकर म्यांमार सरकार और आंग सान सूकी की आलोचना हो रही थी। इस आलोचना के स्वर लगातार तेज होते जा रहे हैं। रोहिंग्या संकट का दायरा काफी बड़ा है और सूकी की साख भी दांव पर लगी है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार म्यांमार के सैन्य बलों द्वारा चलाई जा रही दमनपूर्ण कार्रवाई के चलते लाखों रोहिंग्या बांग्लादेश का रुख कर रहे हैं।भले ही सूकी किसी औपचारिक पद पर न हों पर एक तरह से म्यांमार की नेता वही हैं। मौजूदा हालात के लिए उन्होंने 'आतंकियों' को जिम्मेदार ठहराते हुए दखल देने से इन्कार कर दिया। रखाइन प्रांत में शुरू हुए इस संकट के बाद पहली बार उन्होंने कहा कि उनकी सरकार अपनी सबसे बड़ी चुनौती से जूझ रही है। हमसे डेढ़ साल में इस चुनौती का समाधान तलाशने की उम्मीद लगाना बेमानी होगा। रखाइन में कई दशकों से ही ऐसे हालात बने हुए हैं। इसकी जड़ें औपनिवेशिक दौर से जुड़ी हैं। देश में जो लोग मौजूद हैं वे भले ही हमारे नागरिक न हों, पर हमें उनकी देखभाल करने की जरूरत है। इसी के साथ

उन्होंने यह रेखांकित किया कि हमारे पास पर्याप्त संसाधन नहीं हैं, फिर भी यह सुनिश्चित करेंगे कि सभी को कानूनी संरक्षण मिले।

यह समझने की जरूरत है कि म्यांमार के सैन्य प्रतिष्ठान पर सूकी का कोई नियंत्रण नहीं है और उनके एवं सैन्य नेतृत्व के बीच अविश्वास की खाई अभी भी बनी हुई है। रोहिंग्या मुसलमानों से निपटने में सैन्य कार्रवाई की निंदा न करके उन्होंने सैन्य जनरलों को एक तरह से राजनीतिक संरक्षण दिया है। मोदी का म्यांमार दौरा बीते पांच वर्षों के दौरान किसी भी भारतीय प्रधानमंत्री की तीसरा म्यांमार दौरा था जिसमें दो तो उन्होंने ही किए हैं। जब इस मसले पर म्यांमार अलग-थलग पड़ता दिखा तो संयुक्त बयान के जरिये भारत ने उसके प्रति यह कहकर समर्थन व्यक्त किया, 'रखाइन में हालिया आतंकी हमलों की भारत कड़ी निंदा करता है, जिनमें म्यांमार सुरक्षा बलों के कई जवानों को जान गंवानी पड़ी है। हम मानते हैं कि आतंक मानवाधिकारों का दमन करता है, लिहाजा आतंकियों का महिमामंडन नहीं किया जाना चाहिए।'म्यांमार अपने अशांत रखाइन प्रांत में जहां रोहिंग्या मुसलमानों के खिलाफ हिंसा थमने का नाम नहीं ले रही हैं, वहां बुनियादी ढांचे और सामाजिक-आर्थिक सहायता के रूप में भारत की मदद लेने पर सहमत है। अपने व्यापक भू-राजनीतिक और सुरक्षा हितों को देखते हुए भारत लगातार म्यांमार को साधने में जुटा है। अपने आसपास चीन के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए भारत इस देश में बुनियादी ढांचे और कनेक्टिविटी से जुड़ी परियोजनाओं के दम पर अपनी पैठ बढ़ाना चाहता है। म्यांमार में चीनी प्रभाव की काट तलाशना भारत के लिए मुश्किल होता जा रहा है, क्योंकि चीन हथियारों से लेकर अनाज तक सभी चीजें उसे बेच रहा है और अगर चीन म्यांमार में अपनी नौसैनिक मौजूदगी बढ़ाता है तो भारत के समक्ष हिंद महासागर में चुनौतियां और बढ़ जाएंगी। इसलिए यह कोई हैरानी की बात नहीं कि म्यांमार मोदी सरकार की 'एक्ट ईस्ट नीति' के मूल में है और उसे लेकर तमाम महत्वाकांक्षी परियोजनाओं का तानाबाना बुना जा रहा है।

इनमें भारत-म्यांमार-थाईलैंड एशियाई त्रिपक्षीय राजमार्ग, कलादन मल्टी मॉडल प्जेक्ट, ड-रीवर-पोर्ट कार्गो ट्रांसपोर्ट प्जेक्ट के अलावा बिम्सटेक (बहु-स्तरीय तकनीकी एवं आर्थिक सहयोग के लिए बंगाल की खाड़ी के देशों की पहल) जैसी योजनाएं प्रमुख हैं। पूवरेत्तर भारत में अलगाववादियों से निपटने के लिए भी भारत म्यांमार के सुरक्षा बलों के साथ कंधे के कंधा मिलाकर काम कर रहा है। म्यांमार के साथ भारत की 1,600 किलोमीटर सीमा लगती है और अपनी जमीन से नगा विद्हियों को खदेड़ने में म्यांमार का रवैया बेहद सहयोगात्मक रहा है। भारत म्यांमार को ऐसे लोकतंत्र के रूप में उभरते हुए देखना चाहेगा जो अपने पड़ोसियों के साथ शांतिपूर्वक रहे। यह इच्छा शायद देर से जाकर पूरी हो, लेकिन अतीत में म्यांमार के साथ भारत के रिश्ते यही बताते हैं कि उसे न छेड़ना ही भारत के हित में रहा है।नब्बे के दशक के मध्य तक भारत म्यांमार के सैनिक शासकों का कटु आलोचक हुआ करता था, पर तेजी से वृद्धि करते दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों के साथ जुड़ने की हसरत के साथ अपनी एक्ट ईस्ट नीति को सिरे चढ़ाने के लिए भारत ने एक ओर जहां वहां के सैनिक शासकों को लेकर अपने तेवर नरम किए वहीं दूसरी ओर लोकतंत्र के लिए आवाज उठा रही सू की का मुखर समर्थन भी बंद किया। जब भारत ने देखा कि उसके लिए बेहद अहम प्राकृतिक गैस का एक बड़ा स्नोत तो उसके बगल में है और वह लगातार चीनी शिकंजे में कसता जा रहा है तो उसने सैनिक शासकों के साथ दोस्ती गांठना शुरू कर दी। म्यांमार के मामले में भारत के सामने पश्चिमी देशों के रुख पर टिकना मुश्किल था। यहां उसके समक्ष विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की भूमिका और अपने सामरिक हितों को लेकर दुविधा बनी हुई थी।भारत में म्यांमार के शरणार्थियों की बड़ी तादाद है जो 1998 में वहां हुई फौजी कार्रवाई के चलते यहां आए थे। भारतीय अभिजात्य वर्ग लंबे समय से सू की के नेतृत्व में चल रहे आंदोलन का समर्थक रहा है। 1993 में सू की को भारतीय नागरिक सम्मान से भी नवाजा जा चुका है। हाल के वर्षों में म्यांमार को लेकर भारत के रणनीतिक हित और ज्यादा अहम हो गए हैं, क्योंकि व्यापार, ऊर्जा

और रक्षा क्षेत्र् में चीन के साथ म्यांमार की गलबहियां कुछ ज्यादा बढ़ी हैं। म्यांमार पर पश्चिमी देशों के प्रतिबंधों का विध करके भारत ने म्यांमार के सत्ता प्रतिष्ठान का भी पुख्ता भरोसा हासिल किया है।125 वर्षों के बाद नवंबर 2015 में म्यांमार में पहली बार हुए खुले चुनाव में जब सू की के नेतृत्व वाली नेशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी यानी एनएलडी ने बहुमत हासिल किया तो सू ने स्टेट काउंसलर और विदेश मंत्री का पद संभाला। इससे उन्हें म्यांमार के भविष्य को आकार देने के लिए सेना के साथ मिलकर काम करने का मौका मिला और यहीं भारत को अपना कौशल दिखाने की गुंजाइश मिली। रणनीतिक लाभ की यह स्थिति भारत ने बड़ी मेहनत से हासिल की है जिसे वह किसी भी सूरत में गंवाना नहीं चाहेगा।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 15-09-17

हिसाब देना पड़ेगा अब

रीता सिंह

दो चुनाव के बीच देश के नेताओं की संपत्ति में 500 प्रतिशत से भी अधिक की बढ़ोत्तरी से सर्वोच्च न्यायालय का चिंतित और असहज होकर सरकार को डांट-डपट लगाना उचित ही है। कारण कि वह ऐसे नेताओं के विरुद्ध कार्रवाई के बजाए हाथ-पर-हाथ धरे बैठी है और बार-बार ताकीद किए जाने के बावजूद उनका ब्योरा अदालत के समक्ष उपलब्ध नहीं करा रही है। अदालत ने सरकार के दोहरे मानदंड पर नाराजगी जताते हुए यह भी कहा है कि एक तरफ तो वह कह रही है कि चुनाव सुधार की समर्थक है, वहीं इस मसले पर ठोस कदम उठाने से बच रही है। सर्वोच्च अदालत ने यह सख्त टिप्पणी चुनाव के लिए नामांकन पत्र दाखिल करने के दौरान उम्मीदवारों द्वारा आय का स्रेत खुलासा करने की मांग करने वाली याचिका पर की है। उल्लेखनीय है कि एक एनजीओ लोकप्रहरी ने इस संबंध में सर्वोच्च अदालत में याचिका दायर कर कहा है कि नामांकन के समय उम्मीदवार अपनी संपत्ति का ब्योरा तो देते हैं, लेकिन वे यह नहीं बताते कि उनकी आमदनी का स्रेत क्या है। किसी से छिपा नहीं है कि देश में ऐसे हजारों नेता हैं, जिनके पास हजारों करोड़ की संपत्ति है। लेकिन उनकी संपत्ति का असल स्रेत क्या है, इसे बताने को तैयार नहीं हैं। ध्यान देना होगा कि इनमें से कई नेताओं पर अदालत में आय से अधिक संपत्ति का मामला दर्ज है और वे अदालत का चक्कर काट रहे हैं और कई जेल भी जा चुके हैं। सर्वोच्च अदालत इस बात से हैरान है कि जब सरकार चुनाव सुधार के लिए फिक्रमंद है तो फिर वह ऐसे नेताओं के विरुद्ध कार्रवाई से क्यों बच रही है? सरकार के रवैये पर शीर्ष अदालत की यह सख्त टिप्पणी इसलिए भी वाजिब है कि इसी असामान्य कमाई के बूते राजनेता चुनाव में सीमा से अधिक धन खर्च कर चुनाव को प्रभावित कर रहे हैं।

जबकि चुनाव आयोग किसी भी उम्मीदवार को निर्धारित सीमा से अधिक खर्च करने का अधिकार नहीं देता है। जनप्रतिनिधित्व कानून की धारा 77 (1) में स्पष्ट उल्लेख है कि सभी उम्मीदवारों के लिए चुनाव खर्च का हिसाब रखना अनिवार्य है और धारा 77 (3) के मुताबिक खर्च निर्धारित राशि से अधिक नहीं होनी चाहिए। 1975 में सर्वोच्च न्यायालय

ने लोक सभा सदस्य अमरनाथ चावला की सदस्यता इस आधार पर समाप्त कर दी थी कि उन्होंने निर्धारित सीमा से अधिक खर्च किया था। इस केस में अदालत ने यह भी व्यवस्था दी की अत्यधिक संसाधन की उपलब्धता किसी उम्मीदवार को दूसरों के मुकाबले अनुचित लाभ प्रदान करती है। चुनाव आयोग इस खेल से अपरिचित नहीं है। वह हर चुनाव में सैकड़ों करोड़ रुपये जब्त करता है। लेकिन हैरान करने वाला तय यह है कि नेता इस दिशा में ठोस कदम उठाने के बजाए यथास्थिति बनाए रखना चाहते हैं। गौर करें तो चुनाव सुधार में अडंगेबाजी की यह फितरत कोई नई नहीं है। 1975 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के विरुद्ध तत्कालीन इंदिरा गांधी की सरकार ने जनप्रतिनिधित्व कानून 1951 की धारा 77 में संशोधन कर यह व्यवस्था दी कि उम्मीदवारों के सहयोगियों और शुभचिंतकों के खर्च को उम्मीदवार के खर्च से अलग माना जाएगा। फिर सर्वोच्च अदालत ने 1994 में वाई के गडक बनाम बालासेह विखे पाटिल मामले में इस व्यवस्था को खत्म करने पर जोर दिया जो धनबल के इस्तेमाल को उचित ठहराती है। साथ ही उसने गंजन बापट मामले में राजनीतिक दलों द्वारा प्राप्त एवं खर्च की गई राशि का सही हिसाब रखने व नियम बनाने का सलाह दिया। जानना यह भी जरूरी है कि 1996 में कॉमन लॉज मामले में सर्वोच्च अदालत ने जनप्रतिनिधित्व कानून की धारा 77 की व्याख्या कंपनी अधिनियम 1956 के आलोक में की। इस अधिनियम की धारा 293-अ के अंतर्गत इस पर कर में छूट है। लेकिन ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जो राजनीतिक दलों को सही खाता रखने को मजबूर करे।1998 में तत्कालीन गृहमंत्री इंद्रजीत गुप्ता के नेतृत्ववाली संसदीय समिति ने राज्य पोषित कोष से चुनाव खर्च वहन करने की सिफारिश की थी। लेकिन सियासी जमात उस पर विमर्श को तैयार नहीं है। कुछ दल तो इस तरह के सुझाव को सिरे से खारिज कर उससे उत्पन होने वाली समस्याओं को प्रेत की भांति खड़ा कर रहे हैं। दरअसल, उनकी मंशा और नीयत में खोट है। वे नहीं चाहते हैं कि चुनाव में सुधार हो। यही वजह है कि वे अज्ञात स्रेतों का खुलासा करने से बच रहे हैं और बेनामी चंदे के स्रेत को बताने को तैयार नहीं हैं।

THE HINDU

Date: 15-09-17

Creating corridors of certainty

The effort to link tiger reserves needs many more stakeholders and political will

Neha Sinha

Ranthambore in Rajasthan is arguably India's most well-known tiger reserve, aglow with bold tigers posing for the camera. It has a fierce conservation ethic, a success story with few parallels. It is estimated that there are over 60 tigers in this relatively small tiger reserve. But what about the future? A genetic study suggests that Ranthambore's tigers suffer from low genetic diversity and isolation.While the reserve itself is doing well in terms of tiger numbers, it is cut off from other forests. This is a microcosm for many other tiger reserves in India. Several are admirably run with healthy tiger numbers, but simultaneously they are also witness to fast-paced disturbance in the landscape around them. While numbers of tigers are stable inside reserves, connectivity between them is getting cut off.

Based on a study of samples from tiger post-mortems and collection from live tigers, a new study, which had inputs from laboratories at the Wildlife Institute of India, the Centre for Cellular and Molecular Biology, Kerala Veterinary and Animal Sciences University, and Aaranyak has found that India has three distinct and genetically connected tiger populations. These are in: south India; central India, the Terai and north-east India; and in Ranthambore. The Ranthambore population has the least genetic diversity and may suffer from isolation. There are two issues here: populations require genetic flow to remain robust; securing healthy tiger numbers are not enough for tiger health. Second, we are in an age of active management. When tigers go extinct in an area, they are flown in or carried in from other areas — as was done in the case of Panna (Madhya Pradesh) and Sariska (Rajasthan). It appears, prima facie, that the problem is solved. But are these management devices a suitable proxy for genetic flow through actual habitat corridors?

Wild, but stranded

India has more than 60% of the global wild tiger population. Thus, the question is not just of today but also of tomorrow.Several studies suggest that tigers do well in remote and dense forest. But tigers also need new forest to colonise, dispersing from their natal areas as they reach adulthood. Natural history has viewed the tiger to be the epitome of the 'wild' animal — doing well in areas with less human disturbance, taking down large prey, keeping a distance from people, and being fiercely territorial of space. Modern surveillance proves this theory demonstrating that tigers will traverse long, difficult distances to establish territories. As examples, we have had tigers moving from Ranthambhore to Bharatpur (Rajasthan), from Pilibhit to Lucknow (both Uttar Pradesh), and from Pench (Madhya Pradesh) to Umred (Maharashtra).

Genetically isolated or stranded populations can suffer from genetic depression, and subsequently, mutations and ailments. This has already happened to species which have had stranded populations such as the Florida panther and possibly the Great Indian Bustard. While the tiger is undoubtedly the epitome of wildness, its wildness is not restricted to being a fierce obligate carnivore which hunts to survive, dying when weakened. Wildness and wildlife conservation also include preserving ecological processes which hold their own evolutionary potential. A robust forest or habitat corridor between tiger reserves is an important means of maintaining these ecological processes and may hold the key to the survival and adaptation of the species.

Yet today there is a hard disregard for conservation outside protected areas. Even the cores of reserves are on the chopping block. Is this because there is contentment that tiger numbers are stable overall? In Madhya Pradesh, the Ken-Betwa river interlinking project will submerge a large part of the Panna tiger reserve and landscape. A new proposed irrigation project will submerge more than three lakh trees in the Palamau tiger reserve (Jharkhand). New highway proposals which will make wider cuts through Sariska, Kaziranga (Assam) and between the Kanha and Pench reserves are being considered or implemented. Clearly, a wildlife corridor or habitat is a bad word in the lexicon of planning and development.

Not just numbers

The tiger story is built around a narrative of numbers. Undoubtedly, numbers are important. They indicate a continuous protection effort and that the habitat is doing well. But numbers are the beginning of the tiger story, and not the end.The fact that the forest department carries out conservation but does not own land outside of the forest is an important factor. Thus an effort to link reserves would need many more stakeholders and political will. This is not easily done, but needs to be attempted as a conservation

priority. Rajasthan recently created the Mukundra tiger reserve for Ranthambore's 'spillover' tigers. Apart from moving tigers with human intervention, the corridor between the two reserves should be strengthened too. Other States need to start restoring corridors or stepping stones between forests.With mounting human pressure, to ask for more acres of protected forests may be utopian. But conserving workable corridors is doable — and as science shows us, also necessary.